



Journal of INDIAN KNOWLEDGE STUDIES (JIKS)

उपनिषद का 'ईशावास्य' दर्शन और 'विकसित भारत 2047': संयमित उपभोग के जरिए सतत विकास और जलवायु लक्ष्यों को हासिल करने का रास्ता

डॉ. धर्मेन्द्र यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर-अर्थशास्त्र राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सांगीपुर प्रतापगढ़ उत्तर प्रदेश

सारांश

इक्कीसवीं सदी में संपूर्ण विश्व एक तरफ तीव्र आर्थिक प्रगति की होड़ में शामिल है, तो दूसरी तरफ संसाधन क्षरण, जैव विविधता की हानि और जलवायु परिवर्तन जैसी गंभीर चुनौतियों से जूझ रहा है। इस संकट की जड़ें काफी हद तक आधुनिक नवशास्त्रीय अर्थशास्त्र के उस मूल ढाँचे में निहित हैं, जो असीमित मानवीय इच्छाओं और निरंतर उपभोग-संचालित विकास को ही मानव कल्याण का एकमात्र मापदंड मानता है। इस उपभोक्तावादी मॉडल ने प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया है, जिससे पर्यावरण संतुलन पूरी तरह बिगड़ा है। भारत ने वर्ष 2047 तक एक समृद्ध और 'विकसित भारत' बनने का राष्ट्रीय संकल्प लिया है। हालाँकि, इस लक्ष्य को केवल सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की उच्च विकास दर से हासिल नहीं किया जा सकता; इसके लिए एक ऐसे सतत, समावेशी और नैतिक विकास मॉडल की आवश्यकता है जो आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ प्रकृति का संरक्षण भी करे। मेरा यह शोध पत्र भारतीय ज्ञान परंपरा के अंतर्गत ईशावास्योपनिषद के प्रथम मंत्र—विशेष रूप से 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' (त्यागपूर्वक एवं संयमित उपभोग) की आर्थिक और पारिस्थितिकीय प्रासंगिकता का एक गहन विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन इस मूल विचार को रेखांकित करता है कि उपभोग का उद्देश्य लालच या अंधाधुंध संचय नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण आवश्यकता पूर्ति होना चाहिए। मेरा यह शोध पत्र दर्शाता है कि किस प्रकार उपनिषद का यह प्राचीन 'संयमित उपभोग' का विचार संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य 12 (उत्तरदायी उपभोग और उत्पादन) तथा भारत सरकार के वैश्विक 'पर्यावरण के लिए जीवनशैली' आंदोलन के साथ स्वाभाविक रूप से मेल खाता है। मेरे अध्ययन में केवल सैद्धांतिक व्याख्या तक सीमित न रहकर, आधुनिक व्यवहारपरक अर्थशास्त्र और प्रोत्साहन सिद्धांतों का उपयोग किया गया है। इनके माध्यम से उपनिषदिक जीवनशैली और मूल्यों को आज की समष्टि-आर्थिक नीतियों, कर व्यवस्था, शिक्षा और व्यापारिक ढाँचे में लागू करने हेतु एक व्यावहारिक नीतिगत रोडमैप प्रस्तावित किया गया है। अंततः, मेरा यह शोध पत्र यह सिद्ध करता है कि आर्थिक विकास और पर्यावरण सुरक्षा एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। ईशावास्य दर्शन को अपनी विकास नीतियों की नींव बनाकर भारत न केवल अपने 2047 के राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है, बल्कि वैश्विक जलवायु संकट के समाधान के लिए विश्व के सामने एक नया नैतिक व सतत आर्थिक मॉडल भी पेश कर सकता है।

मुख्य शब्द

पारंपरिक ज्ञान, बौद्धिक संपदा अधिकार, जैव विविधता, जैविक संसाधन, TKDL, जैव-अपहरण, पेटेंट, GI, लाभ-साझेदारी, भारतीय ज्ञान प्रणाली।

ARTICLE HISTORY

Received: 15 September 2026
Revised: 22 September 2026
Accepted: 30 September 2026
Published: 12 October 2026

CITATION

डॉ. धर्मेन्द्र यादव., (2026). उपनिषद का 'ईशावास्य' दर्शन और 'विकसित भारत 2047': संयमित उपभोग के जरिए सतत विकास और जलवायु लक्ष्यों को हासिल करने का रास्ता. *Journal of Indian Knowledge Studies (J. Indian Knowl. Stud.)*, 1(2), 29-35.
<https://doi.org/10.71371/jiks.29-35>

प्रस्तावना

वर्तमान दौर में जहाँ पूरा विश्व केवल भौतिक प्रगति की अंधी दौड़ में शामिल है, वहीं इसके कारण गंभीर पर्यावरणीय और जलवायु संकट भी खड़े हो गए हैं। भारत के वर्ष 2047 तक 'विकसित भारत' बनने के राष्ट्रीय सपने को केवल आर्थिक वृद्धि दर के भरोसे हासिल नहीं किया जा सकता, बल्कि इसके लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण भी बेहद ज़रूरी है। यह शोध पत्र ईशावास्योपनिषद के 'संयमित उपभोग' के सिद्धांत के माध्यम से आर्थिक विकास और पर्यावरण सुरक्षा के बीच एक व्यावहारिक संतुलन बनाने का रास्ता दिखाता है।

1.1 शोध की पृष्ठभूमि:

इक्कीसवीं सदी की वैश्विक अर्थव्यवस्था एक अभूतपूर्व और गंभीर विरोधाभास के दौर से गुजर रही है। अठारहवीं सदी की औद्योगिक क्रांति के बाद से विश्व भर में उत्पादन और उपभोग की तकनीकों में जो क्रांतिकारी बदलाव आए, उन्होंने निस्संदेह प्रति व्यक्ति आय, जीवन स्तर और भौतिक सुख-सुविधाओं में अप्रत्याशित वृद्धि की है। परंतु, इस आर्थिक समृद्धि की एक बहुत भारी कीमत हमारी पृथ्वी और इसके पर्यावरण को चुकानी पड़ी है। अंधाधुंध औद्योगीकरण, जीवाश्म ईंधनों के अत्यधिक दोहन और निरंतर बढ़ते उपभोक्तावाद के कारण आज वैश्विक स्तर पर कार्बन उत्सर्जन अपने उच्चतम स्तर पर पहुँच चुका है। इसके परिणामस्वरूप वैश्विक तापवृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग), मौसम के चक्र में अनिश्चितता, समुद्र के जलस्तर में वृद्धि और जैव विविधता का तीव्र क्षरण जैसी भयावह समस्याएँ मानव सभ्यता के अस्तित्व के सामने सीधे प्रश्नचिह्न खड़ा कर रही हैं। इसी पृष्ठभूमि में भारत ने वर्ष 2047 तक, अर्थात् अपनी स्वतंत्रता के शताब्दी वर्ष तक, स्वयं को एक 'विकसित भारत' के रूप में स्थापित करने का ऐतिहासिक और महत्वाकांक्षी राष्ट्रीय संकल्प लिया है। इस विज्ञान का मुख्य लक्ष्य भारत को केवल एक उच्च-आय वाली अर्थव्यवस्था बनाना ही नहीं है, बल्कि देश के प्रत्येक नागरिक को एक सम्मानजनक और गुणवत्तापूर्ण जीवन प्रदान करना भी है। हालाँकि, भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वह अपने विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करते समय पश्चिमी देशों के उस पारंपारिक विकास मॉडल का अनुकरण नहीं कर सकता, जिसने आर्थिक वृद्धि के लिए पर्यावरण की बलि चढ़ा दी। छब्बीसवें जलवायु सम्मेलन (कोप 26) में भारत द्वारा घोषित 'पंचामृत' लक्ष्य—जिसमें वर्ष 2070 तक शुद्ध-शून्य (नेट-जीरो) कार्बन उत्सर्जन हासिल करना शामिल है—और वैश्विक स्तर पर शुरू किया गया 'पर्यावरण के लिए जीवनशैली' आंदोलन इस बात के अकाट्य प्रमाण हैं कि भारत आर्थिक प्रगति और पर्यावरणीय संवेदनशीलता के बीच एक मजबूत संतुलन स्थापित करने के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध है।

1.2 समस्या का कथन:

जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय संकट से निपटने के लिए अब तक वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर पर जितने भी नीतिगत प्रयास किए गए हैं, उनमें से अधिकांश का ध्यान मुख्य रूप से तकनीकी समाधानों और वित्तीय व्यवस्थाओं तक ही सीमित रहा है। उदाहरण के लिए, नवीकरणीय ऊर्जा (जैसे सौर और पवन ऊर्जा) का विस्तार, बिजली से चलने वाले वाहनों (इलेक्ट्रिक व्हीकल्स) को बढ़ावा देना, ऊर्जा दक्षता बढ़ाना और कार्बन साख (कार्बन क्रेडिट) जैसे वित्तीय तंत्रों का निर्माण करना। यद्यपि ये सभी प्रयास अत्यंत आवश्यक हैं, लेकिन ये केवल आपूर्ति-पक्ष (सप्लाई-साइड) के सुधारों को संबोधित करते हैं। वास्तविक समस्या यह है कि केवल आपूर्ति-पक्ष के तकनीकी उपाय तब तक बेअसर साबित होंगे, जब तक कि माँग-पक्ष (डिमांड-साइड), यानी समाज और व्यक्ति के उपभोग व्यवहार में मूलभूत बदलाव नहीं लाया जाता। आधुनिक पाश्चात्य अर्थशास्त्र का पूरा ढाँचा इस धारणा पर टिका हुआ है कि मनुष्य की इच्छाएँ असीमित हैं और व्यक्ति का कल्याण इस बात से मापा जाता है कि वह कितनी वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग करता है। इस 'उपयोगिता अधिकतमकरण' के विचार ने वैश्विक स्तर पर 'अति-उपभोक्तावाद' और 'दिखावटी उपभोग' की संस्कृति को जन्म दिया है, जहाँ आवश्यकता से अधिक संसाधनों का संचय और बर्बादी प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गई है। यदि विकसित भारत 2047 की दिशा में बढ़ते हुए भारत की 140 करोड़ से अधिक आबादी ने भी इसी उपभोक्तावादी जीवनशैली को अपना लिया, तो संसाधनों की खपत का स्तर इतना अधिक हो जाएगा कि कोई भी हरित तकनीक पर्यावरण को बिनाश से नहीं बचा पाएगी। अतः समस्या केवल यह नहीं है कि हम ऊर्जा का उत्पादन कैसे करते हैं, बल्कि असली समस्या यह है कि हम संसाधनों का उपभोग किस मानसिकता और किस सीमा तक करते हैं।

1.3 शोध के उद्देश्य:

ईशावास्योपनिषद के प्राचीन दार्शनिक सिद्धांतों और 'विकसित भारत 2047' के आधुनिक समष्टि-आर्थिक लक्ष्यों के बीच वैचारिक संबंध स्थापित करने के लिए इस अध्ययन को स्पष्ट दिशा देना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु मैंने अपने शोध पत्र में कुछ मुख्य लक्ष्यों को निर्धारित किया है

1. ईशावास्योपनिषद के प्रथम मंत्र की आर्थिक एवं पारिस्थितिकीय प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।
2. उपनिषदिक 'संयमित उपभोग' के विचार की आधुनिक पाश्चात्य उपभोग सिद्धांतों से तुलना करना।
3. विकसित भारत 2047 की प्राप्ति हेतु एक अंतःविषय नीतिगत ढाँचा तैयार करना।

1.4 शोध प्रश्न:

उपनिषदिक दर्शन के आर्थिक एवं पारिस्थितिकीय आयामों को गहराई से समझने तथा उन्हें आधुनिक नीतिगत परिदृश्य से जोड़ने के लिए कुछ मूलभूत प्रश्नों का अनुशीलन आवश्यक है। मेरा अध्ययन केवल सैद्धांतिक अवधारणाओं की व्याख्या तक सीमित न रहकर, व्यवहारपरक एवं समष्टि-आर्थिक धरातल पर उनके व्यावहारिक प्रभाव का मूल्यांकन करता है। इसी वैचारिक ढाँचे के आधार पर इस शोध पत्र में मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर मैंने खोजने का प्रयास है:

प्रश्न 1: ईशावास्य दर्शन में निहित 'संयमित उपभोग' का विचार नवशास्त्रीय अर्थशास्त्र के 'उपयोगिता अधिकतमकरण' के सिद्धांत से किस प्रकार भिन्न है?

प्रश्न 2: 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' का दर्शन 2047 तक भारत के आर्थिक और जलवायु लक्ष्यों को प्राप्त करने में कैसे योगदान दे सकता है?

1.5 शोध की महत्ता:

मेरा यह शोध पत्र समकालीन विकास अर्थशास्त्र और प्राचीन भारतीय दर्शन के बीच एक मजबूत वैचारिक और व्यावहारिक पुल का निर्माण करता है। वर्तमान समय में जहाँ पूरा विश्व जलवायु संकट के समाधान केवल आधुनिक तकनीक और पश्चिमी आर्थिक सिद्धांतों में खोज रहा है, मेरा यह अध्ययन भारतीय ज्ञान परंपरा की अंतर्दृष्टि का उपयोग करके एक वैकल्पिक और अधिक स्थायी मार्ग प्रस्तुत करता है।

मेरे इस शोध की महत्ता इस बात में निहित है कि यह ईशावास्योपनिषद के दार्शनिक सूत्र 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' को केवल एक धार्मिक या नैतिक उपदेश के रूप में नहीं देखता, बल्कि इसे नीति आयोग के 'विकसित भारत 2047' के रोडमैप और संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों के साथ जोड़कर एक व्यावहारिक मैक्रो-इकोनॉमिक (समष्टि-आर्थिक) नीतिगत ढाँचे में बदलता है। यह शोध नीति-निर्माताओं, अर्थशास्त्रियों और विचारकों को एक ऐसा नज़रिया प्रदान करता है जो आर्थिक विकास दर (जीडीपी वृद्धि) को पर्यावरणीय विनाश से अलग (डीकपल) करने में मदद कर सकता है। भारत इस दार्शनिक व व्यावहारिक मॉडल को अपनी नीतियों में अपनाकर न केवल अपने राष्ट्रीय लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त कर सकता है, बल्कि जलवायु परिवर्तन से जूझ रही पूरी दुनिया के सामने 'विश्वगुरु' के रूप में एक ऐसा विकास मॉडल पेश कर सकता है जो आर्थिक रूप से समृद्ध और पारिस्थितिकी रूप से संतुलित हो

साहित्य की समीक्षा:

मैंने अपने अध्ययन के वैचारिक आधार को मजबूत करने के लिए पाश्चात्य उपभोग सिद्धांतों, आधुनिक जलवायु अर्थशास्त्र और भारतीय दर्शन से जुड़ी प्रमुख रचनाओं का अध्ययन किया। यह समीक्षा यह

समझने में मदद करती है कि किस प्रकार पश्चिमी अर्थशास्त्र का 'असीमित उपभोग' वाला मॉडल आधुनिक पर्यावरण संकट की मुख्य वजह बना। इसके साथ ही, यह अनुभाग वर्तमान अध्ययनों की उन कमियों को भी सामने लाता है जिन्हें ईशावास्य दर्शन के व्यावहारिक प्रयोग से दूर किया जा सकता है।

2.1 पाश्चात्य अर्थशास्त्र में उपभोग सिद्धांत:

एडम स्मिथ से लेकर जॉन मेनार्ड केन्स तक, पाश्चात्य अर्थशास्त्र ने उपभोग को आर्थिक गतिविधियों का मुख्य चालक माना है। थॉर्स्टीन वेब्लेन (1899) ने अपनी पुस्तक 'द थ्योरी ऑफ द लेजर क्लास' में 'दिखावटी उपभोग' की अवधारणा पेश की, जो दर्शाती है कि समाज में प्रतिष्ठा दर्शाने के लिए अनावश्यक उपभोग किया जाता है। नवशास्त्रीय अर्थशास्त्र का यह मानना कि व्यक्ति का कल्याण उसकी उपभोग की गई वस्तुओं की मात्रा पर निर्भर करता है, आधुनिक पर्यावरणीय संकट का एक प्रमुख कारण है।

2.2 सतत विकास एवं जलवायु अर्थशास्त्र पर आधुनिक साहित्य:

निकोलस स्टर्न (2006) की रिपोर्ट ने यह स्पष्ट किया कि जलवायु परिवर्तन का प्रभाव सकल घरेलू उत्पाद में भारी गिरावट का कारण बन सकता है। जलवायु परिवर्तन पर अंतर-सरकारी पैनल की विभिन्न रिपोर्टों और संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य 12 ने माना है कि उपभोग और उत्पादन के तरीकों को बदले बिना वैश्विक तापवृद्धि को डेढ़ डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखना असंभव है।

2.3 भारतीय आर्थिक दर्शन एवं भारतीय ज्ञान परंपरा पर साहित्य:

जे. सी. कुमारप्पा (1945) ने अपनी कृति 'इकोनॉमी ऑफ परमानेंस' में महात्मा गांधी के विचारों के आधार पर एक ऐसी अर्थव्यवस्था की वकालत की जो प्रकृति के चक्र के साथ तालमेल बिठाकर चले। स्वामी विवेकानन्द और श्री अरविन्द के भाष्यों में उपनिषदों के व्यावहारिक पक्ष को रेखांकित किया गया है।

2.4 शोध का अंतर:

यद्यपि प्राचीन भारतीय दर्शन और आधुनिक सतत विकास पर अलग-अलग व्यापक साहित्य उपलब्ध है, लेकिन ईशावास्योपनिषद के सिद्धांतों को समष्टि-अर्थशास्त्र के व्यावहारिक मापदंडों और भारत सरकार के 'विकसित भारत 2047' के विशिष्ट लक्ष्यों से जोड़ने वाला कोई ठोस आर्थिक ढाँचा वर्तमान साहित्य में उपलब्ध नहीं है। मेरा यह शोध पत्र इसी रिक्तता को भरने का प्रयास करता है।

3. शोध कार्यप्रणाली:

मेरा अध्ययन मुख्य रूप से एक अवधारणात्मक, गुणात्मक और विश्लेषणात्मक शोध पर आधारित है। मेरे इस अध्ययन की मूल प्रकृति

ईशावास्योपनिषद के प्राचीन दार्शनिक सिद्धांतों और आधुनिक सतत विकास के समष्टि-आर्थिक मापदंडों के बीच तुलनात्मक अंतर-विषयक विश्लेषण करना है। शोध के निष्कर्षों को तार्किक और प्रामाणिक बनाने के लिए मैंने प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों से सामग्री का एकीकरण किया है। शोध के प्राथमिक स्रोतों के अंतर्गत ईशावास्योपनिषद के प्रथम मंत्र के मूल पाठ और उसके दार्शनिक अर्थों का गहराई से अध्ययन किया गया है। इसके साथ ही, भारत सरकार के आधिकारिक नीतिगत दस्तावेजों जैसे—नीति आयोग द्वारा जारी 'विकसित भारत 2047' की कार्ययोजना, नीति आयोग के सतत विकास लक्ष्य भारत सूचकांक, तथा 'पर्यावरण के लिए जीवनशैली' आंदोलन के आधिकारिक नीतिगत प्रारूप (पॉलिसी ड्राफ्ट) का मुख्य आंकड़ों और दिशा-निर्देशों हेतु उपयोग किया है।

द्वितीयक स्रोतों के रूप में, वैश्विक संदर्भ और वैश्विक साक्ष्यों को शामिल करने के लिए संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, विश्व बैंक, और जलवायु परिवर्तन पर अंतर-सरकारी पैनल द्वारा जारी अद्यतन समीक्षा रिपोर्टों का विश्लेषणात्मक उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त, विकास अर्थशास्त्र, पर्यावरण नीति और भारतीय ज्ञान परंपरा से जुड़ी अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर की प्रतिष्ठित पीयर रिव्यू शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों को समीक्षा का आधार बनाया है।

विश्लेषणात्मक ढाँचे के संदर्भ में, मेरा यह शोध केवल पारंपरिक सैद्धांतिक व्याख्या तक सीमित नहीं रहता। उपनिषदिक विचारों को वास्तविक जीवन और आर्थिक नीतियों में व्यावहारिक रूप से लागू करने के लिए, आधुनिक व्यवहारपरक अर्थशास्त्र के सिद्धांतों और रिचर्ड थेलर के 'प्रोत्साहन सिद्धांत' को विश्लेषण का मुख्य माध्यम बनाया है। इस ढाँचे की सहायता से यह समझने का प्रयास किया गया है कि व्यक्ति और समाज के उपभोग व्यवहार में 'त्यागपूर्वक उपभोग' के नैतिक मूल्यों को किस प्रकार स्वतः-प्रेरित और नीतिगत बदलावों के जरिए प्रभावी ढंग से लागू किया जा सकता है।

4. सैद्धांतिक एवं विश्लेषणात्मक व्याख्या:

यह अनुभाग ईशावास्योपनिषद के प्रथम मंत्र के आर्थिक दर्शन को समष्टि-आर्थिक मापदंडों के प्रकाश में विश्लेषित करने का एक प्रयास करता है। यहाँ उपनिषदिक 'संयमित उपभोग' की तुलना आधुनिक पाश्चात्य अर्थशास्त्र के 'उपयोगिता अधिकतमकरण' सिद्धांत से करते हुए दोनों के पर्यावरणीय प्रभावों का सूक्ष्म अध्ययन किया है। अंततः, यह व्याख्या यह स्पष्ट करती है कि किस प्रकार यह प्राचीन भारतीय दर्शन भारत के 'हरित विकास' और 2047 के राष्ट्रीय विज़न के लिए एक ठोस वैचारिक आधार प्रदान करता है।

4.1 ईशावास्य दर्शन का आर्थिक विश्लेषण:

ईशावास्योपनिषद का प्रथम मंत्र प्राचीन भारतीय दर्शन का एक ऐसा

अप्रतिम स्तम्भ है, जो केवल आध्यात्मिक चेतना तक सीमित न रहकर गूढ़ आर्थिक और पारिस्थितिकीय (इकोलॉजिकल) अंतर्दृष्टि भी प्रदान करता है। मंत्र "ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥" को यदि समष्टि-आर्थिक (मैक्रो-इकोनॉमिक) दृष्टिकोण से देखा जाए, तो इसके तीन मूलभूत आयाम निकलकर सामने आते हैं जो आधुनिक सतत विकास की रीढ़ बन सकते हैं।

पहला आयाम, "ईशावास्यमिदं सर्वम्...", यह स्वीकार करता है कि इस भौतिक जगत में जो कुछ भी गतिमान या विद्यमान है, उस पर सर्वव्यापी चेतन सत्ता या प्रकृति का अधिकार है। आर्थिक संदर्भ में यह सिद्धांत व्यक्तिगत स्वामित्व की उस संकीर्ण धारणा को चुनौती देता है जो प्राकृतिक संसाधनों को केवल एक व्यक्ति या एक पीढ़ी की निजी संपत्ति मानती है। यह विचार आधुनिक अर्थशास्त्र के 'साझा संसाधन प्रबंधन' (कॉमन पूल्ड रिसोर्सेस) और अंतर-पीढ़ीगत न्याय (इंटर-जनरेशनल इक्विटी) के विचार को सुदृढ़ करता है। इसका स्पष्ट संदेश है कि हवा, जल, जंगल और खनिज जैसी प्राकृतिक संपदाएँ किसी एक वर्ग का एकाधिकार नहीं हैं, बल्कि ये भावी पीढ़ियों के लिए धरोहर हैं।

दूसरा आयाम, "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः", इस दर्शन का सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक सूत्र है। यह उपभोग का पूर्णतः त्याग या संन्यास का मार्ग नहीं सिखाता, बल्कि 'त्यागपूर्वक उपभोग' या संयमित एवं विवेकपूर्ण उपभोग की वकालत करता है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संसाधनों का उपयोग अवश्य करना चाहिए, परंतु उसमें त्याग की भावना और प्रकृति के प्रति आभार का भाव होना चाहिए। जब उपभोग में संयम और विवेक जुड़ जाता है, तो अति-उपभोग और संसाधनों की बर्बादी स्वतः रुक जाती है।

तीसरा आयाम, "मा गृधः कस्यस्विद्धनम्", अति-संचय और लालच पर सीधे तौर पर रोक लगाता है। यह चेतावनी देता है कि किसी अन्य के धन या प्राकृतिक संसाधनों पर अवांछित कब्ज़ा न करें। आधुनिक वैश्विक अर्थव्यवस्था में फैली भीषण आर्थिक असमानता और पर्यावरण क्षरण की मुख्य जड़ यही 'गृध्रता' या अनियंत्रित लालच है। इस प्रकार, ईशावास्य दर्शन एक ऐसी संतुलित आर्थिक प्रणाली का प्रस्ताव रखता है जहाँ उत्पादन और उपभोग की सीमाएँ नैतिक मूल्यों और प्राकृतिक क्षमताओं द्वारा निर्धारित होती हैं।

4.2 तुलनात्मक विश्लेषण: पाश्चात्य अर्थशास्त्र बनाम ईशावास्य मॉडल:

समकालीन आर्थिक संकट को गहराई से समझने के लिए पाश्चात्य नवशास्त्रीय (नियॉक्लासिक) अर्थशास्त्र और उपनिषदिक ईशावास्य मॉडल के बीच तुलनात्मक अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है।

पाश्चात्य अर्थशास्त्र का पूरा ढाँचा व्यक्तिवादी उपयोगिता अधिकतमकरण (यूटिलिटी मैक्सिमाइजेशन) के सिद्धांत पर टिका हुआ है। इस मॉडल का मानना है कि मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसकी इच्छाएँ असीमित हैं और उसकी खुशी या कल्याण इस बात पर निर्भर करता है कि वह कितनी अधिक मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग करता है। इस विचार ने समाज में 'दिखावटी उपभोग' और अत्यधिक भौतिकवाद को जन्म दिया है, जिसके कारण उत्पादन और खपत का एक ऐसा दुष्चक्र शुरू हो गया है जो प्राकृतिक संसाधनों का तेज़ी से दोहन कर रहा है।

इसके विपरीत, ईशावास्य मॉडल आवश्यकता-आधारित और संयमित उपभोग को कल्याण का मूल आधार मानता है। जहाँ नवशास्त्रीय अर्थशास्त्र प्रकृति को केवल उत्पादन की एक सामग्री, कच्चा माल या उपभोग का साधन मानता है, वहीं ईशावास्य मॉडल प्रकृति को एक जीवित, पूजनीय और सह-अस्तित्व वाले तंत्र के रूप में देखता है। पाश्चात्य मॉडल में प्रगति और विकास का मापदंड केवल सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की वृद्धि दर और भौतिक वस्तुओं का संचय है, जो अक्सर समाज में तनाव, असमानता और पर्यावरणीय असंतुलन पैदा करता है।

दूसरी ओर, ईशावास्य मॉडल में मानव कल्याण को नैतिक संतुलन, मानसिक शांति, सामाजिक सद्भाव और पर्यावरणीय स्थिरता के सामंजस्य से मापा जाता है। पर्यावरणीय प्रभाव के दृष्टिकोण से देखें तो पाश्चात्य उपभोग-संचालित मॉडल अत्यधिक कार्बन पदचिह्न (कार्बन फुटप्रिंट) और प्रदूषण पैदा करता है, जबकि ईशावास्य दर्शन पर आधारित आर्थिक व्यवहार न्यूनतम कार्बन पदचिह्न और शून्य-अपशिष्ट जीवनशैली को बढ़ावा देता है। संक्षेप में, पाश्चात्य मॉडल जहाँ 'अधिक से अधिक उपभोग' पर बल देता है, वहीं ईशावास्य मॉडल 'विवेकपूर्ण और संतुलित उपभोग' को प्राथमिकता देता है।

4.3 'विकसित भारत 2047' और हरित समष्टि-अर्थशास्त्र:

भारत ने वर्ष 2047 तक लगभग तीस खरब (ट्रिलियन) डॉलर की विशाल अर्थव्यवस्था बनने और एक पूर्णतः विकसित राष्ट्र के रूप में उभरने का महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित किया है। हालाँकि, यदि भारत ने इस आर्थिक ऊँचाई तक पहुँचने के लिए पश्चिमी देशों के पारंपरिक विकास पैटर्न का अनुकरण किया—जो उच्च ऊर्जा खपत, भारी औद्योगिक अपशिष्ट और असीमित उपभोक्तावाद पर आधारित रहा है—तो यह न केवल भारत के पारिस्थितिकी तंत्र के लिए बल्कि संपूर्ण पृथ्वी के लिए एक विनाशकारी स्थिति उत्पन्न कर देगा। इतने विशाल जनसांख्यिकी वाले देश के लिए पुराना विकास मॉडल व्यावहारिक रूप से टिकाऊ नहीं है।

यहाँ ईशावास्य दर्शन भारत को एक वैकल्पिक और नवीन 'हरित समष्टि-अर्थशास्त्र' (ग्रीन मैक्रो-इकोनॉमिक्स) का मार्ग दिखाता है। यह दार्शनिक ढाँचा भारत को एक ऐसी विकास नीति बनाने में मदद

करता है जहाँ आर्थिक वृद्धि का संबंध पर्यावरण विनाश से पूरी तरह अलग (डीकपल) हो सके। ईशावास्य का 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' का सिद्धांत आधुनिक 'चक्रीय अर्थव्यवस्था' (सर्कुलर इकोनॉमी) की नींव का काम करता है। चक्रीय अर्थव्यवस्था में संसाधनों का इस प्रकार उपयोग किया जाता है कि वस्तुओं का बार-बार पुनः उपयोग, पुनर्चक्रण (रिसाइक्लिंग) और अपशिष्ट का न्यूनतम उत्पादन हो, जो उपनिषदिक संयम का ही तकनीकी रूप है।

इसके अतिरिक्त, यह दार्शनिक मॉडल भारत सरकार के वैश्विक 'पर्यावरण के लिए जीवनशैली' आंदोलन को एक मज़बूत वैचारिक आधार प्रदान करता है। यह आंदोलन यह रेखांकित करता है कि जब तक व्यक्तिगत और सामुदायिक स्तर पर उपभोग की आदतों में बदलाव नहीं आएगा, तब तक कोई भी हरित तकनीक पूरी तरह सफल नहीं हो सकती। ईशावास्य दर्शन को अपनी समष्टि-आर्थिक नीतियों का केंद्र बनाकर भारत 2047 तक एक ऐसी समृद्ध अर्थव्यवस्था का निर्माण कर सकता है जो भौतिक रूप से सशक्त, सामाजिक रूप से न्यायपूर्ण और पर्यावरणीय रूप से पूरी तरह से सुरक्षित हो।

5. नीतिगत सिफारिशें एवं रोडमैप:

'विकसित भारत 2047' के राष्ट्रीय विज़न को साकार करने के लिए ईशावास्योपनिषद के दर्शन को केवल एक सैद्धांतिक अवधारणा तक सीमित नहीं रखा जा सकता। इसे भारत की समष्टि-आर्थिक (मैक्रो-इकोनॉमिक) नीतियों और प्रशासनिक ढाँचे में व्यावहारिक रूप से लागू करने की आवश्यकता है। इसके लिए एक त्रि-स्तरीय रोडमैप प्रस्तावित किया जाता है, जो व्यवहारपरक अर्थशास्त्र, राजकोपीय नीति और संस्थागत उत्तरदायित्व पर केंद्रित है।

5.1 व्यवहारपरक नीतियाँ:

मानव व्यवहार को पर्यावरण-अनुकूल दिशा में मोड़ने के लिए केवल कड़े नियम या कानून पर्याप्त नहीं होते; इसके लिए प्रोत्साहन और जागरूकता का व्यावहारिक उपयोग आवश्यक है। प्राथमिक स्तर पर, भारत की शिक्षा प्रणाली में आमूलचूल बदलाव करते हुए प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में ईशावास्य दर्शन और भारतीय ज्ञान परंपरा के पर्यावरण-अनुकूल सिद्धांतों को शामिल किया जाना चाहिए। छात्रों को केवल किताबी ज्ञान देने के बजाय 'शून्य-अपशिष्ट जीवनशैली' और 'संयमित उपभोग' के व्यावहारिक अभ्यासों से जोड़ा जाए। इसके अलावा, डिजिटल बाज़ार और सार्वजनिक सेवाओं में 'इच्छित विकल्प' (डिफ़ॉल्ट चॉइस) का उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, ई-कॉमर्स (इलेक्ट्रॉनिक व्यापार) और खाद्य वितरण मंचों पर 'एकल-उपयोग प्लास्टिक' या अनावश्यक पैकेजिंग को हटाने का विकल्प स्वतः-निर्धारित होना चाहिए। जब उपभोक्ताओं को बिना

प्लास्टिक पैकेजिंग के उत्पाद चुनने के लिए अतिरिक्त प्रयास नहीं करना पड़ेगा, तो संयमित उपभोग सामाजिक व्यवहार का स्वाभाविक हिस्सा बन जाएगा।

5.2 राजकोषीय एवं आर्थिक नीति:

राजकोषीय नीतियाँ समाज में उपभोग के स्वरूप को बदलने का एक सशक्त साधन हैं। सरकार को ऐसी कर प्रणाली विकसित करनी चाहिए जो पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले उत्पादों को हतोत्साहित करे और हरित उत्पादों को बढ़ावा दे। जो वस्तुएँ अत्यधिक कार्बन उत्सर्जन करती हैं, गैर-पुनर्चक्रण योग्य हैं या अनावश्यक अति-उपभोग को बढ़ावा देती हैं, उन पर उच्च दर से कर (जैसे 'पाप कर' या उच्च जीएसटी दरें) लागू किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, जो उद्योग चक्रीय अर्थव्यवस्था (सर्कुलर इकोनॉमी), पुनर्चक्रण तकनीक और जैविक उत्पादों को अपनाते हैं, उन्हें कर में छूट और सब्सिडी दी जानी चाहिए। वित्तीय क्षेत्र में भी व्यापक सुधार की आवश्यकता है। बैंकों और वित्तीय संस्थानों द्वारा ऋण प्रदान करते समय 'पर्यावरणीय, सामाजिक और शासन' (ईएसजी) मापदंडों के आधार पर एक 'हरित साख अंक' (ग्रीन क्रेडिट स्कोर) तैयार किया जाना चाहिए। जिस संस्था या व्यक्ति का उपभोग व्यवहार पर्यावरण-अनुकूल होगा, उसे कम ब्याज दरों पर ऋण और वित्तीय प्रोत्साहन दिए जाने चाहिए।

5.3 संस्थागत सामाजिक उत्तरदायित्व और उद्योग नीति:

उद्योगों और कॉर्पोरेट जगत को केवल लाभ कमाने की मशीन के रूप में देखने के बजाय उन्हें पारिस्थितिकी तंत्र का एक अंग माना जाना चाहिए। भारत में लागू 'निगम सामाजिक उत्तरदायित्व' (सीएसआर) के नियमों में संशोधन करके यह अनिवार्य किया जाना चाहिए कि कंपनियों के सीएसआर बजट का एक निश्चित हिस्सा केवल प्राकृतिक संसाधनों के पुनरुद्धार पर ही खर्च हो। उद्योगों को पारंपरिक जल संरक्षण तकनीकों, वृक्षारोपण, और स्थानीय पारिस्थितिक तंत्र के पुनरुद्धार में सीधा निवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। उद्योग नीति का मुख्य लक्ष्य 'शून्य-दोष, शून्य-प्रभाव' (ज़ीरो डिफ़ेक्ट, ज़ीरो इफ़ेक्ट) के सिद्धांत को अपनाना होना चाहिए, जहाँ उत्पादन प्रक्रिया से पर्यावरण पर न्यूनतम प्रभाव पड़े और बनने वाला अपशिष्ट पुनः उपयोग के लायक बनाया जा सके।

6. निष्कर्ष:

'विकसित भारत 2047' की संकल्पना केवल सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की वृद्धि दर बढ़ाने, बुनियादी ढाँचे का विस्तार करने या प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करने तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। विकास की परिभाषा तब तक अधूरी है जब तक कि वह समाज के अंतिम व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता और पर्यावरण की सुरक्षा को

सुनिश्चित न करे। यदि भारत पाश्चात्य देशों के असीमित उपभोग और संसाधन-दोहन वाले मॉडल को अपनाता है, तो इसके दीर्घकालिक परिणाम देश की जैव विविधता, जल सुरक्षा और जलवायु पर अत्यंत भयावह होंगे।

ईशावास्योपनिषद का 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' का शाश्वत संदेश हमें याद दिलाता है कि आर्थिक समृद्धि और पर्यावरणीय संतुलन परस्पर विरोधी नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। त्यागपूर्वक और संयम से किया गया उपभोग न केवल हमारी आत्मा और समाज को संतुलित करता है, बल्कि पृथ्वी को विनाश की कगार से भी बचाता है। जब तक व्यक्तिगत, सामाजिक और सरकारी स्तर पर नैतिक संयम की नीतियों का अभिन्न अंग नहीं बनाया जाएगा, तब तक संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (विशेषकर लक्ष्य 12) को प्राप्त करना असंभव रहेगा। भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित इस दर्शन को अपनी राष्ट्रीय नीतियों की आत्मा बनाकर भारत न केवल वर्ष 2047 तक अपने विकास लक्ष्यों को सफलतापूर्वक हासिल कर सकता है, बल्कि वैश्विक जलवायु संकट का समाधान प्रस्तुत करते हुए संपूर्ण विश्व के सामने एक नैतिक और स्थायी आर्थिक मॉडल भी पेश कर सकता है।

7. शोध की सीमाएँ एवं भविष्य की दिशाएँ:

7.1 शोध की सीमाएँ:

प्रत्येक अकादमिक शोध की अपनी कुछ स्वाभाविक सीमाएँ होती हैं, जो अध्ययन के दायरे और विश्लेषणात्मक ढाँचे को निर्धारित करती हैं। मेरा यह शोध पत्र मुख्य रूप से उपनिषदिक दर्शन और समष्टि-आर्थिक नीतियों के बीच अवधारणात्मक एवं नीतिगत संबंधों के अध्ययन पर केंद्रित है। अध्ययन के निष्कर्षों को सही परिप्रेक्ष्य में समझने और भविष्य में इस दिशा में और अधिक सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए इन सीमाओं को रेखांकित करना अत्यंत आवश्यक है:

मेरा यह शोध पत्र मुख्य रूप से गुणात्मक, अवधारणात्मक और नीतिगत विश्लेषण पर आधारित है। इस अध्ययन में कुछ व्यावहारिक सीमाएँ हैं जिन्हें स्वीकार करना आवश्यक है। पहला, इस पत्र में प्राचीन दार्शनिक ग्रंथों के सिद्धांतों और आधुनिक समष्टि-आर्थिक चर (मैक्रो-इकोनॉमिक वेरिएबल्स) के बीच वैचारिक संबंध स्थापित किया गया है, किंतु इसमें क्षेत्र-विशेष (जैसे शहरी मध्यवर्ग बनाम ग्रामीण आबादी) के उपभोग डेटा का प्राथमिक मात्रात्मक (क्वांटिटेटिव) विश्लेषण शामिल नहीं है। दूसरा, अलग-अलग आय वर्गों में 'संयमित उपभोग' की परिभाषा और प्रभाव भिन्न हो सकते हैं, क्योंकि निम्न-आय वर्ग के लिए मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति प्राथमिकता होती है, जबकि उच्च-आय वर्ग में अति-उपभोग की समस्या अधिक पाई जाती है; इस अंतर का सूक्ष्म आर्थिक प्रभाव इस शोध में विस्तृत रूप से शामिल नहीं हो सका है।

7.2 भविष्य की दिशाएँ:

मेरे इस शोध पत्र द्वारा तैयार किए गए वैचारिक ढाँचे के आधार पर भविष्य में कई व्यावहारिक और प्रायोगिक शोध कार्य किए जा सकते हैं। शोधकर्ता विभिन्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों में उपभोग व्यवहार को मापने के लिए एक व्यावहारिक 'संयमित उपभोग सूचकांक' (सस्टेनेबल कंजम्पशन इंडेक्स) का निर्माण कर सकते हैं। इसके माध्यम से यह मापा जा सकता है कि कौन-सा राज्य या सामाजिक वर्ग

उपनिषदिक जीवनशैली के कितने निकट है और उसका कार्बन पदचिह्न कितना है। इसके अतिरिक्त, व्यवहारपरक अर्थशास्त्र के 'नज सिद्धांत' का उपयोग करते हुए प्रायोगिक परीक्षण किए जा सकते हैं कि किस प्रकार के नीतिगत प्रोत्साहन लोगों को वास्तविक जीवन में अति-उपभोग छोड़ने और पर्यावरण-अनुकूल विकल्प चुनने के लिए प्रेरित करते हैं।

8. संदर्भ सूची:

1. अष्टांग संस्कृत पाठ. (2018). ईशावास्योपनिषद (गीताप्रेस संस्करण) (अंक 1, पृ. 12-18). गोरखपुर: गीताप्रेस.
2. कुमारप्पा, जे. सी. (1945). इकोनॉमी ऑफ परमानेंस: अ क्वेस्ट फॉर अ सोशल ऑर्डर बेस्ड ऑन नॉन-वायलेंस (खंड 1, अंक 2, पृ. 45-89). वर्धा: 3.ऑल इंडिया विलेज इंडस्ट्रीज एसोसिएशन.
3. नीति आयोग. (2022). पर्यावरण के लिए जीवनशैली : अवधारणा, ढाँचा और वैश्विक कार्यान्वयन नीति (रिपोर्ट संख्या 4, पृ. 101-145). नई दिल्ली: नीति आयोग, भारत सरकार.
4. नीति आयोग. (2023). विकसित भारत हेतु समष्टि-आर्थिक रणनीति और रोडमैप @2047 (दस्तावेज संख्या 12, पृ. 34-78). नई दिल्ली: नीति आयोग, भारत सरकार.
5. वेब्लेन, टी. (1899). द थ्योरी ऑफ द लेजर क्लास: एन इकोनॉमिक स्टडी ऑफ इंस्टीट्यूशंस (खंड 3, अंक 1, पृ. 60-112). न्यू यॉर्क: मैकमिलन पब्लिशिंग कंपनी.
6. संयुक्त राष्ट्र. (2015). ट्रांसफॉर्मिंग अवर वर्ल्ड: द 2030 एजेंडा फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट (सतत विकास लक्ष्य 12 पर विशेष रिपोर्ट) (प्रकाशन संख्या ए/आरईएस/70/1, पृ. 14-29). न्यू यॉर्क: संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम.
7. स्टर्न, एन. (2006). द इकोनॉमिक्स ऑफ क्लाइमेट चेंज: द स्टर्न रिव्यू ऑन सस्टेनेबल ग्लोबल इकोनॉमी (खंड 15, अंक 3, पृ. 210-285). कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
8. थेलर, आर. एच., एवं सनस्टीन, सी. आर. (2008). नज: इंप्रूविंग डिजीजन्स अबाउट हेल्थ, वेल्थ, एंड हैप्पीनेस (खंड 2, अंक 4, पृ. 175-220). न्यू हेवन: येल यूनिवर्सिटी प्रेस.

COPYRIGHT:

© 2026 The Author(s). This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC-BY 4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited. See <http://creativecommons.org/licenses/by/4.0/>